National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2017; 1(10): 50-54
© 2017 NJHSR
www.sanskritarticle.com

वेदवर्द्धन
शोधछात्र,संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence:
वेदवर्द्धन
शोधछात्र,संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

व्याकरण दर्शन व परम्परा - एक विहंगावलोकन

वेदवर्द्धन

व्याकरण दर्शन

इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्। यदि शब्दाह्नयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।[1]

'आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'[2],यह श्रुति आत्मसाक्षात्कार को ही मोक्षरूप में निरूपित करती है। अतः आत्मसाक्षात्कार के साधक वेदान्तादि शास्त्र ही दर्शन पदवाच्य हैं, न कि पदसंस्कार द्वारा शब्दसाक्षात्कार का साधक व्याकरणशास्त्र। आत्मसाक्षात्कार ही तो दर्शन है (दृश्यते तत्त्वमनेनेति)। आध्यात्मिक शास्त्रें में प्रसङ्गप्राप्त लौकिक विषयों के विश्लेषण का भी, तात्पर्य यदि आध्यात्मिक ही है, तब वे ही दर्शन कहलाने योग्य हैं, अन्य लौकिक विषय नहीं। पदसंस्कार या वाक्संस्कार की प्रमुखता वाला शब्दशास्त्र तो ऐसा नहीं है, तो इसे दर्शन कैसे मानें? व्याकरणशास्त्र को दर्शन मानने में सबसे पहले यह शंका उपस्थित होती है। क्योंकि शब्दरूप ब्रह्म ही प्रत्यगात्म ब्रह्म है[3], अतः दोनों के अभिन्न होने के कारण 'शब्दब्रह्म' पदवाच्य 'परब्रह्म' की प्राप्ति में हेतुभूत शब्दशास्त्र भी आध्यात्मिक ज्ञान का उपाय है, इसी लिये दर्शन पदवाच्य है। आशय यह है कि 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन'[4] , सदेव सोम्येदमग्र ब्रह्म आसीदेकमेवाद्वितीयम्[5] , ब्रह्मैवेदं सर्वम्[6] , आत्मैवेदं सर्वम्[7] आदि श्रुतियों द्वारा जगत्कारण का एकत्व, सत्यत्व, आत्मत्व, ब्रह्मत्वादि जैसे प्रतिपादित है वैसे ही -

वागेवार्थं पश्यति वागेवार्थं ब्रवीति वागेवार्थं निहितं सन्तनोति।
वाच्येव विश्वं बहुरूपं निबद्धं तदेतदेकं प्रविभज्योपभुष्क्ते।।

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्, ओमित्येतदक्षरं परब्रह्म तदेवोपासितव्यम्[8], ओमिति ब्रह्म[9], वाग्वै ब्रह्म, वाग्वै विश्वकर्मा, वाग्वै विराट्, वागेवविश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत्सर्वममृतं यच्च मर्त्यम्[10], सभूरिति व्याहरत् भुवमसृजत्, प्रणव एवैकस्त्रिधा विभजयते[11], ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म[12] ,शब्दब्रह्मैव नामरूपे व्याकरवाणि[13] , आदि श्रुतियों के द्वारा जगत्कारण की शब्दरूपता भी प्रतिपादित है। अतः शब्दब्रह्म ही जगत्कारण है, जिसकी प्राप्ति में हेतुभूत शब्दशास्त्र आध्यात्मिक ज्ञान होने के कारण दर्शनशास्त्र है।

दर्शन पद भाव या करणार्थक प्रत्यय से निष्पन्न है। भावप्रत्यय होने पर अर्थ होगा - दृष्टि। करणपक्ष में अर्थ हुआ - दृश्यते, प्रत्यक्षीक्रियते, अनुमीयते, शब्दजन्यबोधविषयीक्रियते अनेनेति दर्शनम् - अर्थात् दृष्टिसाधन या प्रत्यक्षसाधन। भर्तृहरि ने योगिप्रत्यक्ष को दर्शन माना है।[14] दर्शन ज्ञानदृष्टि (दिव्यदृष्टि) या विशेषदृष्टि है। भौतिक-प्रत्यक्ष का अतिक्रमण कर, उसे असत्य जान कर सत्यरूप परब्रह्म (शब्दब्रह्म) का ज्ञानचक्षुओं से साक्षात्कार ही दर्शन कहलाता है। भर्तृहरि व्याकरण की दार्शनिकता का संकेत करते हैं-

"उपायाःशिक्षमाणानां बालानामुपलालना।
असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।।[15] **"**

इसी अन्तर्दृष्टि के कारण वैदिक मन्त्रद्रष्टाओं का ऋषित्व सिद्ध है, जैसा कि पतञ्जलि कहते हैं-

'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।'[16]

क्योंकि स्फोटरूप शब्दतत्त्व के ज्ञानमात्र से ही मुमुक्षुओं को मोक्षप्राप्ति नहीं होती है। उसके लिये श्रुति व स्मृति के द्वारा बताये गये विविध सन्ध्यावन्दन-ब्रह्मयज्ञ-पितृयज्ञ-नृयज्ञ-अध्ययन-अध्यापनादि सत्कर्मों का अनुष्ठान भी मुमुक्षुओं के लिये आवश्यक है। अतः व्याकरणमात्र ही मोक्ष का साधक नहीं है? ऐसा नहीं है - यद्यपि मोक्ष की प्राप्ति में मात्र शब्दशास्त्र ही हेतु नहीं है। तथापि उक्त सन्ध्यावन्दनादि सत्कर्मों में वाक्संस्कारक होने से तथा वाक्तत्त्व की साधाना के द्वारा ज्ञानदृष्टि या योगिप्रत्यक्ष का लाभ कराकर सन्ध्यादि में दृढतर प्रवृत्ति कराने वाला शब्दशास्त्र, परम्परया इन सत्कर्मों का भी साधक है तथा इन्हीं के समान श्रुति व स्मृति के द्वारा

बताया गया भी है। अतः सन्ध्यादि सत्कर्मों का परम्परया एवं शब्दज्ञान का साक्षात् हेतुभूत शब्दशास्त्र नितान्त मोक्षोपकारक है। इसीलिये स्मृति कहती है -**"शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।"**[17]

श्रुति-स्मृति-आप्तवाक्यादि स्वयं वाग्रूप ब्रह्म के ही विवर्त हैं, अतः उनकी व उनके द्वारा अनुमोदित समस्त कर्मों की प्राप्ति व प्रवृत्ति का स्वाभाविक हेतु शब्दशास्त्र ही है। अस्तु! यह तो स्पष्ट है कि जिन-जिन उपायों से तत्त्वसाक्षात्कार सम्भव है वे सभी दर्शन पदवाच्य हैं। सभी का मूल श्रुति है -

"श्रोतव्यो श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः।।"[18]

अतः श्रुतिवाक्यों के श्रवणादि के अतिरिक्त जो कुछ भी विचार्यमाण या परिलक्ष्यमाण है, वह दर्शन हो ही नहीं सकता, पुनः कैसे श्रुतिभिन्न शास्त्रें को दर्शन कहें?

क्योंकि सभी शास्त्रें के उद्भावक आचार्यों के चित्त में, वही भगवती श्रुति साक्षात् या परम्परया ज्ञान के रूप में स्थित है, अतः उनके द्वारा रचित शास्त्रें के भी श्रुत्यनुकूल होने से, उन्हें भी दर्शन कहा गया। वस्तुतः ये श्रुति में प्राप्त बीजों का ही परिबृंहण करते हैं तथा श्रुतिवचनों के सार का स्मरण कराने से ही 'स्मार्त' कहलाते हैं। श्रुतिसम्मत सिद्धान्त का वक्ता ही आप्तवक्ता कहलाता है।

व्याकरण-दर्शन के बीज वैदिक ऋचाओं में ही प्राप्त होते हैं। वाणी के चार भागों की कल्पना दार्शनिक चिन्तन की पराकाष्ठा है -

"चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति।।"[19]

मनुष्यों में समाये हुए महान् शब्दवृषभ का वर्णन विलक्षण है -

"चत्वरि शृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश।।"[20]

यही मत सिद्धान्तशैवसार में प्रतिपादित किया -**"सर्वभूतान्तरचरः शब्दब्रह्मात्मको रविः"**[21]

पतञ्जलि भी व्याकरण के द्वारा महान् शब्दवृषभ से सायुज्यप्राप्ति का निर्देश करते हैं -**'महता देवेन नः साम्यं यथा स्यादित्यध्येयं व्याकरणम्।'**[22] भर्तृहरि भी कहते हैं-

"अपि प्रयोक्तुरात्मानं शब्दमन्तरवस्थितम् ।
प्राहुर्महान्तं वृषभं येन सायुज्यमिष्यते ।।"[23]

श्रुति कहती है शब्दशास्त्र के द्वारा जो वाक्तत्त्व को जान लेता है, उसके समक्ष शब्दब्रह्म (परब्रह्म) पूर्ण रूप में प्रकाशित हो जाता है।[24] भगवती वाक् उसके समक्ष अपना सुन्दरतम रूप अव्यवहित रूप से प्रकट करती है। उक्त वेदवाक्य ब्राह्मणों में व्याख्यात होकर औपनिषदिक-विवेचन के आधार बने। गोपथ ब्राह्मण शब्दशास्त्र के ज्ञान के लिये साक्षात् ओङ्काररूप अक्षरब्रह्म को स्मरण करता है - **'ओङ्कारं पृच्छामः को धातुः, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातम्, किं लिङ्गम्, किं वचनम्, का विभक्तिः, कः प्रत्यय इति।'**[25] योगिराज श्रीकृष्ण शब्दतत्त्व का ब्रह्मभाव प्रतिपादित करते हैं - **'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म'**[26] , **'अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते'**[27],**'अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।'**[28] आचार्य पतञ्जलि अक्षरसमाम्नाय को ब्रह्म की प्राप्ति में साधक मानते हैं - **'सोऽयमरक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः।**[29]

शब्दब्रह्म ने सर्वप्रथम स्वयं के ग्राहक ओङ्कार की पुनः अक्षरसमाम्नाय, चार वेद तथा कालशक्ति द्वारा आकाशादि भूतों की क्रमशः सृष्टि कर जगत् की रचना की। अन्त में सृष्टि का शब्दब्रह्म में ही लय होता है -

"विभज्य बहुधात्मानं स च्छन्दस्य प्रजापतिः।
छन्दोमयीभिर्वाग्भिर्बहुधेव विवेशितम्।।"[30]
"त्रयीरूपेण तज्जोतिः प्रथमं परिवर्तते।
विवृतं शब्दमात्रभ्यस्तास्वेव प्रविलीयते।।"[31]

वेदव्यास कहते हैं -

"अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।"[32]

मनु वेदों से लोकव्यवहार के प्रचलन का संकेत करते हैं -

"सर्वेषान्तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।"

इस विषय पर युधिष्ठिर मीमांसक कहते हैं - 'वेद में विभिन्न शब्दों की निरुक्तियों वा पदान्तरों के सान्निध्य से बहुविध अर्थों का निर्देश उपलब्ध होता है। उन्हीं के आधार पर लोक में पदार्थों की संज्ञाऐं रखीं गईं।' 'ऋषियों ने आरम्भ में ही वेद के आधार पर सर्वव्यवहारोपयोगी अतिविस्तृत भाषा का उपदेश किया।'[33] स्वयं वेद कहता है **-"देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।"**[34] शाब्दिकों ने जगत् को शब्दब्रह्म का विवर्त माना है -

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।"[35]
"शब्दस्य परिणामोऽयामित्याम्नायविदो विदुः।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद् विश्वं व्यवर्तत।।"[36]

शब्दब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में वैयाकरण व सिद्धान्त-शैवादि में मतभेद है। शब्दतत्त्व-रूपी ब्रह्म को ऋषि सूक्ष्मप्रणव, परब्रह्म, त्रिमात्रक ओङ्कार, अपरब्रह्म, शब्दब्रह्म आदि नामों से पुकारते हैं। उपनिषद् कहता है - **'एतद्वै सत्यकामः परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारः। तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति।'**[37] क्योंकि परब्रह्म की प्राप्ति का हेतुभूत ओङ्कार ही उसका स्वरूपभूत भी है। स्मृति कहती है -

"द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।।"[38]

शब्दब्रह्म को ही परब्रह्म मानते हुए, वैयाकरण उसकी प्राप्ति का उपाय भी बताते हैं - शब्द का सुसंस्कृत प्रयोग ही परमात्म की सिद्धि का उपयुक्ततम उपाय है। जो शब्द के प्रवृत्तितत्त्व को जान लेता है, वह उसे प्राप्त कर लेता है -

"तस्माद्यः शब्दसंस्कारः सा सिद्धि परमात्मनः।
तस्य प्रवृत्तितत्त्वज्ञो ब्रह्मामृतमश्नुते।।"[39]

व्यवस्थित रूप में शब्दसंस्कार के द्वारा अपभ्रंश के निवारण के साथ शब्द के प्रयोग से, धर्मविशेष का आविर्भाव होता है, इस कारण यह शब्दसंस्कार परब्रह्म की प्राप्ति का हेतु है।[40] साधु (शुद्ध) शब्द के प्रयोग के ज्ञान के साथ-साथ, उस शब्दब्रह्म के प्रवृत्तितत्त्व रूपी, व्यावहार का जो निमित्त है, समस्त शब्दार्थ का जो कारण है, ऐसे 'पश्यन्ती' नामक वाक्तत्त्व को जो जानता है, वह इस ज्ञान के द्वारा शब्दब्रह्म को प्राप्त करता है।[41] शब्दब्रह्म की उपासना से साधक मृत्युञ्जय हो जाता है - **'ते मृत्युमतिवर्तन्ते ये वै वाचमुपासते।'** वाणी के त्रिविध रूपों में 'पश्यन्ती' ही शब्दब्रह्मरूपिणी है, जिसकी इच्छा के बिना जिह्वा स्पन्दन करने में अक्षम होती है। इसकी अनुभूति योगियों को निर्विकल्पक समाधि में होती है। यही वैयाकरणों की उपास्य है। पूर्वोक्त विधि से सुसंस्कृत शब्द के प्रयोग के द्वारा आविर्भूत ज्ञानविशेष (धर्मविशेष) से शुद्ध अन्तःकरण वाले वैयाकरण, यथोत्तर अभ्यास के परिपाक से व्यञ्जकध्वनिरूप वर्ण-पद-वाक्य के अतिरिक्त, हृदय में स्थित स्फोटरूपी मध्यमा वाक् का साक्षत्कार करते हैं। पुनः भावना के अभ्यास के दृढ़तर संस्कार के बल से, वर्णादि क्रम से रहित, मूलचक्र में स्थित 'पश्यन्ती' वाक् की प्रकृति, ज्ञानस्वरूप शब्दब्रह्म का साक्षात् करते हैं। जिसे भर्तृहरि 'पश्यन्ती' मानते हैं उसे ही नागेश 'परा' मानते हैं। ऐसा ही सिद्धान्तशैव के मत में भी माना गया - **"परावाघ्मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।**

हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा।।"[42]

जिस प्रकार सगुण-निर्गुण, पर-अपर आदि के भेद से द्विविध रूप में वर्णित शब्दब्रह्म का एकत्व खण्डित नहीं होता, उसी प्रकार एक ही प्रत्यवमर्शिनी वाक् गुणभूमि का अतिक्रमण कर, कभी पश्न्यती तो कभी परा संज्ञा से वर्णित की जाती है। इसीलिये **'इत्याहुस्ते परं ब्रह्म यदनादि तथाक्षयम्'** इस स्थल पर वैयाकरण के मत के अनुवाद के अवसर पर पश्यन्ती ही परा के रूप में वर्णित है।[43]

व्याकरण के साथ-साथ अन्य श्रुत्यनुकूल शास्त्र भी मोक्षसाधक हैं तथापि व्याकरण उनमें श्रेष्ठतम[44] व ब्राह्मणों का स्वाभाविक जीवनधर्म है।[45]

व्याकरण की दार्शनिक परम्परा

शब्दशास्त्र का प्रयोजन, पदों के प्रयोग का कारण, शब्द की परिभाषा (लक्षण), शब्द से अर्थबोध[46] , शब्दार्थ सम्बन्ध, शब्द का मूल व व्यवहारिक स्वरूप (स्फोट-ध्वनि), प्रकृति-प्रत्यय, उत्सर्ग-अपवाद, सामान्य-विशेष, सन्धि-विग्रह, समास (समष्टि) - व्यास (व्यष्टि), पदार्थ-वाक्यार्थ, भाव-अभाव, सत्-असत्, जाति-व्यक्ति, द्रव्य-आकृति, नाम-रूप, सत्यासत्य, समानाधिकरण्य, समवाय, हेतु, करण, गुण, सम्बन्ध, शक्ति, संख्या, संकेतग्रह आदि मूलतः दार्शनिक विषयों का समाधान ऋग्वैदिक काल से आज तक भाषाशास्त्री खोजते आ रहे हैं। भारतीय परम्परा में इन विषयों पर वैयाकरण, मीमांसक, नैयायिक, काव्यशास्त्रीय, बौद्ध, जैन, शैव आदि दार्शनिक सम्प्रदायों ने गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया। मुख्यतः व्याकरण (पदविज्ञान), मीमांसा (वाक्यविज्ञान), निरुक्त (अर्थविज्ञान) व शिक्षा (ध्वनिविज्ञान) इन शास्त्रें ने भाषा के विभिन्न पक्षों का सर्वाङ्गीण विवेचन प्रस्तुत किया। वैयाकरणों ने स्वयं शब्दब्रह्म को महावैयाकरण माना। ध्वनिकार व्याकरण के दार्शनिक महत्व की ओर इंगित करते हैं **- 'प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः, व्याकरणमूलत्वात्सर्वविद्यानाम्।'**[47] वे अपने ध्वनिसिद्धान्त की प्रतिष्ठा हेतु वैयाकरणों के 'स्फोटवाद' के सर्वदा ऋणी रहेंगे। भर्तृहरि भी कहते हैं - सभी ज्ञानों में वाक्तत्त्व ही अन्तःप्रविष्ट है। यदि ज्ञान में से वाक्तत्त्व पृथक् हो जाय, तो संसार में कोई भी प्रकाश प्रकाशित नहीं हो सकेगा।[48] दण्डी भी उक्त तथ्य का समर्थन करते हैं - यह त्रिभुवन गहन अन्धकार से आवृत होता, यदि शब्दतत्त्व रूपी प्रकाश ने इसे दीप्त न कर दिया होता।[49] व्याकरणदर्शन में कई प्रसिद्ध दार्शनिक-विवेच्य-विषयों का सूक्ष्म विवेचन किया गया। यथा - न्यायवैशेषिक के समान ही यहाँ 'जाति' का विवेचन[50] , अन्य दर्शनों के समान कारण (हेतु) व करण की चर्चा[51], न्याय-वैशेषिक के समान द्रव्य व गुण की चर्चा[52] , पुरुष की चर्चा[53] इत्यादि। न्याय-वैशेषिक के समवाय को समानाधिकरण कहा गया - **'तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः।'**[54] वैयाकरणों ने शब्द को स्फोट या ब्रह्म माना। जैनमत में शब्द पौद्गल या परमाणुरूप है, जिससे समस्त वस्तुओं का निमार्ण होता है। न्याय-वैशेषिक मत में शब्द आकाश का गुण है[55] , जिसकी तरंगें आकश में विस्तृत व संकुचित होती रहती हैं, पर नष्ट नहीं होतीं। शिक्षाकारों के मत में शब्द वायुरूप है।[56] भागवत् में शब्द को जीव कहा गया, जिससे व्याकृत वाक् की उत्पत्ति हुई।[57] वैदिक-साहित्य में व्याकरण-दर्शन के बीजों की चर्चा हम कर चुके हैं। वैदिक काल में वैयाकरणाचार्यों ने आख्यात, धातु, उपसर्ग, अनुदात्त, स्वरित, लिङ्ग, विभक्ति, वचन, प्रातिपदिक, नाम, प्रत्ययादि विषयों का विस्तृत विवेचन किया।[58] यजुर्वेद के अनुसार प्रजापति ने रूपों में सत्य व अनृत (स्फोट व ध्वनि) का व्याकरण तथा सत्य में श्रद्धा व असत्य में अश्रद्धा का उपदेश दिया -

"दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।।"[59]

व्याकरण पद जिस धातु से निष्पन्न होता है, उसका मूल अर्थ में प्रयोग (व्याकरण पद का निर्वचन) यहाँ ध्यातव्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक-काल से लेकर ब्राह्मण, उपनिषद, महाकाव्यों तक आते-आते व्याकरण का व्यवस्थित दार्शनिक विकास हो चुका था। पाणिनि व यास्क के उद्धरणों व पूर्वाचार्यों के मत के प्रदर्शन से यह ज्ञात होता है कि, इनसे पूर्व वैयाकरणाचार्यों की समृद्ध परम्परा रही। जिन्होंने स्फोट, शब्द-नित्यत्वानित्यत्व, नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात, पदार्थ (जाति-व्यक्ति), शब्दों का धातुज सिद्धान्त, आदि दार्शनिक विषयों पर गूढ़ चिन्तन किया था। स्वयं यास्क ने षड्भावविकार, नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात, शब्दनित्यत्वानित्यत्व, शब्द का सूक्ष्म व्यापक (स्फोट) स्वरूप, आदि विषयों का विवेचन किया।[60] यास्क ने स्फोटायन, औदुम्बरायण आदि शाब्दिकों का नामोल्लेख-पूर्वक स्मरण किया है। पाणिनि ने दस पूर्वाचार्यों का नामोल्लेख-पूर्वक स्मरण किया है तथा अन्यों का भी 'एकेषाम्' आदि पदों द्वारा स्मरण किया है। युधिष्ठिर मीमांसक ने 26 पाणिनिपूर्व वैयाकरणों का वर्णन किया है।[61] **इनमें स्फोटायन प्रमुख दार्शनिक हैं।**

स्फोटायन

पाणिनि ने 'अवघ् स्फोटायनस्य'[62] सूत्र में इनका उल्लेख किया है। हरदत्त ने स्फोटायन शब्द की निम्न व्याख्या की - 'स्फोटोऽयनं परायणं यस्य स स्फोटायनः स्फोटप्रतिपादनपरो वैयाकरणाचार्यः। ये त्वौकारं पठन्ति ते नडादिषु अश्वादिषु वा (स्फोटशब्दस्य) पाठं मन्यन्ते।'[63] इस प्रकार स्फोटायन 'स्फोटतत्त्व' के आदि-प्रवर्तक प्रतीत होते हैं। केशव व हेमचन्द्र के मत में स्फोटायन कक्षीवान् कानाम था।[64] युधिष्ठिर मीमांसक इन्हें ही औदुम्बरायण मानते हैं।[65] इनका काल विवादास्पद है। मीमांसक इन्हें 2950 वि.पू.से 3200 वि.पू. के मध्य मानते हैं।

औदुम्बरायण

यास्क ने इनका मत प्रदर्शित करते हुए, इनके नाम का स्मरण किया है।[67] इनका ग्रन्थ अनुपलब्ध है। यास्क के अनुसार इनके मत में इन्द्रियातिरिक्त शब्द की सत्ता को मानने में कोई प्रमाण नहीं - अर्थात् शब्द अनित्य हैं। भरतमिश्र ने इनका नामोल्लेख किया है।[68] इससे ज्ञात होता है कि इन्होंने शब्द के अखण्डभाव या स्फोटात्मकता का प्रतिपादन किया। भर्तृहरि भी इन्हें शब्दनित्यत्ववादी स्वीकार करते हैं।[69] सम्भव है कि स्फोट व ध्वनि के रूप में द्विविधतया विभक्त शब्द के ध्वनिरूप को इन्होंने इन्द्रियनित्य माना हो। अथवा जैसा कि मीमांसक ने कहा है - भर्तृहरि के मतानुसार निरुक्त टीकाकारों की व्याख्या अशुद्ध जाननी चाहिये।[70] मीमांसक ने औदुम्बरायण व स्फोटायन को अभिन्न माना है। इनका काल विवादास्पद है। मीमांसक ने यास्क व पाणिनि से पूर्ववर्ती होने के कारण इन्हें 3100 वि.पू. माना है।

पाणिनि

पाणिनि निर्विवाद रूप से दार्शनिक परम्परा के प्रमुखतम आचार्य हैं। पश्चाद्वर्ती वैयकरणों ने अष्टाध्यायी में उपलब्ध बीजों का ही परिबृंहण अपने ग्रन्थों में किया तथा पाणिनीय मत का अनुमोदन अपने दार्शनिक चिन्तन में किया। यद्यपि आचार्य ने स्फोटायन का उल्लेख किया जो स्फोटवाद के प्रवर्तक के रूप में समादृत हुए, किन्तु स्फोटवाद की स्थापना में आचार्य का योगदान ही आधारभूत है। इनके काल के विषय में भी मतभेद हैं।

वाजप्यायन

इनका ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। पतञ्जलि ने 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' के भाष्य पर 'आकृत्याभिधानाद्वा' कह कर वाजप्यायन का उल्लेख

जातिशक्तिवादी के रूप में किया है।[71]

व्याडि (दाक्षायण)

इनका संग्रह नामक ग्रन्थ अप्राप्त है, इसके उद्धरण विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। पतञ्जलि कहते हैं - 'शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृति।'[72] भर्तृहरि ने संग्रह की व्यापकता का उल्लेख किया है - 'चतुर्दश सहड्डाणि वस्तूनि परीक्षितानि अस्मिन् संग्रह गन्थे।'[73] इसका परिमाण एकलक्ष श्लोकात्मक था।[74] पतञ्जलि इन्हें द्रव्यशक्तिवादी कहते हैं।[75] यह एक दार्शनिक निबन्ध ग्रन्थ माना जाता है।[76] जिसमें शब्द, ध्वनि, वर्ण, पद, वाक्य, उपसर्ग, निपात, नामाख्यातादि विषयों पर गम्भीर विचार किया गया। महाभाष्य व वाक्यपदीय में ऐसे संकेत प्राप्त हैं कि कात्यायन, पतञ्जलि व भर्तृहरि के व्याकरण-दार्शनिक चिन्तन का आधार यही ग्रन्थ रहा।[77] इनका काल अनिर्णीत ही है, तथापि अनुमान किया जता है कि ये प्रायः पाणिनि के समकालीन ही थे। मीमांसक इनका काल 2950 वि-पू- मानते हैं।

कात्यायन

पाणिनि के सूत्रें पर अनेक वार्तिक लिखे गये जिनमें से कात्यायन के वार्तिक प्रसिद्ध हुए। इन्होंने व्याकरण-दर्शन को लोकजीवन से सम्बद्ध किया। इनके द्वारा उद्भावित दार्शनिक चिन्तन को पतञ्जलि एवं बाद में भर्तृहरि ने विकसित किया। पतञ्जलि ने इनके वार्तिकों पर महाभाष्य की रचना की।

पतञ्जलि

पतञ्जलि ने पाणिनीय व्याकरण को शब्दतत्त्व विषयक दार्शनिक चिन्तन से सिक्त किया। इन्होंने कात्यायन के प्रायः सभी वार्तिकों को महाभाष्य में संकलित कर उनकी एवं प्रासंगिक पाणिनीय सूत्रें की भी युक्तिसंगत व्याख्या की, तथा भाषागत नवीन परिवर्तनों को व्याकरण की सीमा में बाँधा। साथ ही अस्पष्ट दार्शनिक विषयों को अधिक स्पष्ट किया। अनेक प्राचीन आचार्यों के मतों व सिद्धान्तों का संकलन तथा विवेचन किया। भर्तृहरि ने इन्हें तीर्थदर्शी गुरू व महाभाष्य को समस्त न्यायबीजों का मूल माना।[78]

भर्तृहरि

मुनित्रय व समकालीन आचार्यों के बाद महान् दार्शनिक भर्तृहरि (पाँचवी शताब्दी ई.) का आविर्भाव हुआ। इन्होंने पाणिनीय दर्शन को चिन्तन के शिखर तक पहुँचाया। भाषा-चिन्तन सम्बन्धी प्रायः सभी विषयों का गम्भीर विवेचन वाक्यपदीय में प्राप्त है। भर्तृहरि भारतीय परम्परा में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में भाषादर्शन के शिखर-पुरुषों में से अन्यतम हैं। शब्दशास्त्र को विकसित दार्शनिक सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन्हीं को है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची : -

मूल ग्रन्थ -

1.अष्टाध्यायीसूत्रपाठः-(पाणिनि) ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलाल कपूर ट्रस्ट, चतुर्दश संस्करण-1994

2.काव्यादर्श-(दण्डी) के.आर. पोद्दार, बी.ओ.आर.आई., 1970

3.गोपथ ब्राह्मण (भाष्य)-प्रज्ञादेवी व मेधादेवी, इलाहाबाद-1977

4.ध्वन्यालोकः- सम्पादक - दुर्गाप्रसाद काशीनाथ पाण्डुरङ्ग, एम.आर.एम.एल., नई दिल्ली, 1983

5.निरुक्त-(यास्क) लक्ष्मण स्वरूप व वी.पी. लिमये, (आलोचनात्मक संस्करण) मेहरचन्द लक्ष्मणदास, नई दिल्ली, 1982

6.पातञ्जल महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योत) -बालशास्त्री, सागर, म.प्र., द्वितीय संस्करण, 1988

7.वाक्यपदीय ऑफ भर्तृहरि-के.वी. अभ्यंकर, पी.वी. लिमये, पूना वि.वि., पूना, 1965

8.वाक्यपदीय (काण्ड-1)-के.ए. सुब्रमण्य अय्यर, डेक्कन कालेज पूना, 1965

9.वैयाकरणभूषणसार-(कौण्डभट्ट) प्रभाकरमिश्र, वाराणसी, सं-- 2029

10.वैशेषिक दर्शन-(कणाद) डुण्ढिराज शास्त्री, चौखम्बा सं- प्रतिष्ठान, वाराणसी सं- 2037

11.श्रीमद्भगवद्गीता-वंशीधर मिश्र, आ- विश्वेश्वर सिद्धान्त - शिरोमणि, चौखम्बा, वाराणसी, 1997

सहायक ग्रन्थ -

1.झा,कामदेव-शब्दब्रह्ममीमांसा (वाक्यपदीय ब्रह्म- के आलोक में), आई.बी.ए. पब्लिकेशन, अम्बाला, 2004

2.झा,गंगानाथ-व्याकरणशास्त्रेशब्दविमर्शः, सम्पादक – के.वी. सोमयाजुलु, नाग पब्लिकेशन, दिल्ली, 2006

3.द्विवेदी,कपिलदेव-अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, हिन्दुस्तान अकादमी, इलाहाबाद, 1951

4.मिश्र,डॉ-कैलाशपति-शब्दाद्वैत दर्शन (भर्तृहरि का दर्शन), कलाप्रकाशन वाराणसी, 2006

5.राम, मंगला-संस्कृत व्याकरण की दार्शनिक मीमांसा, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1995

6.वर्मा, सत्यकाम-व्याकरण की दार्शनिक भूमिका भर्तृहरि पर मुख्यतया आधारित, मुंशीराम मनो. ला., नई दिल्ली, 1971

7.वणी, रामप्रकाश-संस्कृत व्याकरण दर्शन के विविध सोपान, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2006

8.शास्त्री, गौरीनाथ-दि फिलासफी ऑफ भर्तृहरि, भारतीय वि.प्रकाशन, 1991

9.त्रिपाठी, रामसुरेश-संस्कृत व्याकरणदर्शन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-1972

10.मिश्र, रमाकान्त-व्याकरण शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास, चौखम्बा, वाराणसी, 1966

11.मीमांसक, युधिष्ठिर-संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, 3-खण्ड, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, 1950

12.वर्मा, सत्यकाम-संस्कृत व्याकरण का उद्भव और विकास, मुंशीराम मनोहन लाल, दिल्ली, 1971

सन्दर्भ-ग्रन्थ -

1.दण्डी, दशकु-, प्रथमादर्श, श्लोक-3 / काव्यादर्श 1, 4

2.बृहदारण्यक, 2-4-5 ।

3.द्वे ब्रह्मणीवेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत्। - (मैत्र. उ. प्रपा. 6, क. 22), (म. भा., शान्ति-, अ. 210)

4.कठो. 4-11

5.छान्दो., 6-1-1

6.नृसिं., उप., 7-3

7.छान्दो., 7-25-2

8.तारसारोप., 2-1

9.तै. उ., शिक्षाध्याये, सप्तमोनुवाक्

10. शत. ब्रा., 6-5-3-4, पाठान्तर-वाच इत् सर्वमभूद्यच्च मर्त्यम्।

11. छा.उ.

12. तै. आ., उ., प्रपा- 4 तथा महोपनि., अनु- 33, मं- 51

13. छा.उ., 6-322

14.यो यस्य स्वमिव ज्ञानं दर्शनं नातिशघड्डते।
स्थितं प्रत्यक्षपक्षे तं कथमन्यो निवर्तयेत्।। वा.प.

15.वा.प., 20238 तथा -शास्त्रेषु प्रक्रियाभेदैरविद्यैवोपवर्ण्यते।
समारम्भास्तु भावानामनादि ब्रह्म शाश्वतम्।। - तदेव

16.सांख्य प्र.भा., अ- 1, सू- 1
17.मै.उ., प्रपा- 6, कण्डिका 22 तथा महा.भा., शान्ति-, अ- 210
18.सांख्य प्र.भा., 1-1
19.ऋ., 1-164-45 तथा गोपथ ब्रा., 2-16
20.ऋ., 4-58-3
21.सिद्धान्तशै.
22.व्या.म.भा., पस्प.
23.वा.प.,ब्र.-131
24.उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।। (ऋ-, 10-71-4)
25.गो.ब्रा., प्र.प्रपा., 1-24
26.श्री., गीता, 8-13
27.तदेव
28.तदेव, 8-21
29. व्या.म.भा.
30.वा.प.
31.तदेव
32.म.भा., शान्ति-
33.सं.व्या.शा. का इति-, भाग-1, पृ- 3, 4
34.ऋ., 8-100-11
35.वा.प., 1-1
36.तदेव, तथा- शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनी।
यन्नेत्रः प्रतिभात्मायं भेदरूपः प्रतीयते।।
षड्जातिभेदाः शब्देन व्याख्यानो रूप्यते यतः।
तस्मादर्थविधाः सर्वे शब्दमात्रसु निश्चिताः।।
37.प्रश्नो., वल्ली 2, प्र. 5, मं- 3
38.मैत्र. उ., प्रपा- 6, कण्डिका 22। महा.भा., शान्ति., अ- 210
39.वा.प., 1-132 पाठान्तर - तस्य प्रवृत्तितत्वज्ञस्तद् ब्रह्मामृतमश्नुते।
40.एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति।- व्या.म.भा., पस्प.
41.शब्दपूर्वेण ज्ञानेन लभते ज्ञानमीदृशम्।
42.सि.शैवसार
43.'तदक्षरं शब्दरूपं सा पश्यन्ती परा हि वाक्।' - शिवदृष्टिः
44.आसन्नं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः।
प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः।। - वा.प., 1-11
इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम्।
इयं सा मोक्षमाणानामजिह्मा राजपद्धतिः।। - तदेव, 1-16
45.ब्राह्मणेन निष्कारणो ----------ज्ञेय इति।-व्या.म.भा.,प.
46.तस्माच्छोत्रपरिच्छिन्नो यद्यर्थं गमयेन्न वा। सर्वथा तस्य शब्दत्वं लोकसिद्धं न हीयते।।-मी.श्लो.वा.
47.आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक।
48.वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी।। - वा.प., 1-124
49.इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्नयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।। - दण्डी, काव्यादर्श
50.जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्, - अष्टा., 1-2-50, भर्तृहरि ने 'जातिसमुद्देश' में जाति का विस्तृत विवेचन किया।
51.नैयायिकों व वैयाकरणों ने करण की समान परिभाषा दी - 'साधकतमं करणम्' - अष्टा., 1-4-42 तथा तर्कभाषा करणलक्षणम्।
52.वा. प., तृ. का., द्रव्यसमुद्देश आदि।
53.तदेव, पुरुष-
54.अष्टा., 2-1-42
55.शब्दगुणकमाकाशम्।
56.पा.शि.
57.स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेन गुहां प्रविष्टः।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्र स्वरो वर्ण इति प्रसिद्धः/स्थविष्ठः।।
58.'आख्यातोपसर्गानुदात्तस्वरितलिङ्गविभक्तिवचनानि च संस्थानाध्यायिन आचार्याः पूर्वे बभूवुः।'(गो.ब्रा., प्र.प्रपा.,1- 27)तथा - 'ओङ्कारं पृच्छामः को धातुः, किं प्रातिपादिकम्'--- इत्यादि(तदेव, प्र.प्रपा., 1-24)
59.यजु., 19-77
60.'तद्यान्येतानि चत्वारि पदजातानि, नामाख्याते चोसर्ग निपाताश्च' - निरुक्त, 1-1 तथा 'व्याप्तिमत्वादणीयस्त्वाच्च शब्दस्य - तदेव,
61.सं.व्या.शा. का इति., भाग-1
62.अष्टाध्यायी, 6-1-123
63.अष्टाध्यायी - 6-1-123 पर पदमञ्जरी
64.'स्फोटायने तु कक्षीवान्', हेमचन्द्र (अभिधानचिन्तामणि)। तथा - 'स्फोटायनस्तु कक्षीवान्', केशव (नानार्थार्णवसंक्षेप) उद्धृत - युधिष्ठिर मीमांसक – सं.व्या.शा. का इति-, भाग-1, पृ- 201
65.युधिष्ठिर मीमांसक, तदेव
66.तदेव,पृ. 200 तथा तदेव, भाग-2, पृ. 431
67.'इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः', निरुक्त, 1-2।
68.भगवदौदुम्बरायणाद्युपदिष्टाखण्ड भावमपि व्यञ्जनारोपितनान्तरीयकभेद--- अपलापितम्। - स्फोटसिद्धिः, पृ- 1
69.वाक्यस्यबुद्धौ नित्यत्वमर्थयोगं च शाश्वतम्।
दृष्ट्वा चतुष्ट्वं नास्तीति वार्ताक्षौदुम्बरायणौ।। - वा.प., 2-343।
70.युधिष्ठिर मीमांसक, सं.व्या.शा. का इति-, भाग-1, पृ- 202।
71.व्या.म.भा., 1-2-64
72.तदेव, 2-3-66
73.म.भा.दी., पृ- 23
74.'संग्रहो व्याडिकृतो लक्षश्लोकसंख्यो ग्रन्थ इति प्रसिद्धिः',-नागेशभट्ट,- म.भा.प्रदीपोद्योत् 1-1-1
75.द्रव्याभिधानं व्याडि – व्या.म.भा. 1-2-64
76.विस्तरेणोपदिष्टानामर्थानां सूत्रभाष्ययोः। निबन्धो यः समासेन संग्रहं तं विदुर्बुधाः।। - नाट्यशास्त्र - 6-9-1
77.संग्रह एतद् प्राधान्येन परीक्षितम्, नित्यो वा स्यात् कार्यो वेऽति। इत्यादि(व्या-म-भा,पस्प)'संग्रहेऽस्तमुपागते'(वा.प.2-476)'आर्षे विप्लाविग्रन्थे संग्रहे प्रतिकञ्चुके' (तदेव, 2-479)
78.कृतेऽथ पतञ्जलिना गुरूणा तीर्थदर्शिना।
सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने।। वा.प.-2.4777